Introduction

पृष्ठभूमि :--

साहित्य की अन्य विधाओं जैसे कहानी , नाटक, उपन्यास, निबंध, काव्य आदि में नाट्य साहित्य का अपना एक विशिष्ट महत्त्व है । संस्कृत साहित्य में अभिनय प्रदर्शन का स्रोत प्राचीन काल से ही देखा जा सकता है । रामायण एवं महाभारत कालीन समय में भी लोग इस कला से परिचित होते दिखायी देते हैं । वाल्मीकि रामायण में ऐसा उल्लेख प्राप्त होता है कि राजविहीन जनपद में 'नट' और 'नर्तक' प्रसन्न नहीं दिखायी देते थे । साथ ही साथ नटों द्वारा सामान्य जनता के मनोरंजन का भी उल्लेख प्राप्त होता है , यथा--''नाराजके जनपदे प्रहृष्ट नट नर्तकाः '' इससे अधिक नट सूत्रों की प्रामाणिकता का स्पष्ट उल्लेख पतंजलि की अष्टाध्यायी में प्राप्त होता है - ''पाराशर्यशिलालिभ्यां भिक्षु नटसूत्रयोः;''/ ''कर्मन्दकृशाश्वा- दिनिः ।''महाभाष्य में भी 'कंसवध' और 'बलिबन्ध' नाटकों का उल्लेख प्राप्त होता है । इस प्रकार ऐसा नहीं कहा जा सकता है कि नाट्य साहित्य का उद्भव प्राचीन नहीं है । सामान्यतः नाटक शब्द की उत्पत्ति 'नट' धातु से मानी जाती है । जिसका अर्थ है, सात्विक भावों का प्रदर्शन । यही कारण है कि अभिनय को ही नाटक कहा जाता है । ऐसा कहा जाता है कि नट नामक एक जाति थी जो धनोपार्जन हेतु खेल-तमाशा दिखाकर लोगों को मनोरंजन प्रदान करती थी और उसी के आधार पर इसका नामकरण हुआ माना जाता है ।

नाट्यशास्त्र में भरतमुनि ने लिखा है कि - सांसारिक मनुष्यों को अतिखिन्न देखकर इन्द्रादि देवताओं ने ब्रह्मा के पास जाकर ऐसे वेद के निर्माण करने की प्रार्थना की जिससे वेद के अनाधिकारी स्त्री, शूद्रादि सभी लोगों का मनोरंजन हो सके । यह सुनकर ब्रह्मा

ने चारों वेदों से रसादि तत्व ग्रहण करके नाट्य वेद नामक पंचम वेद की रचना की। ब्रह्मा ने एवमस्तु कहकर भरतमुनि को इसका कार्यभार सौंपा और भरतमुनि ने सर्वजन सुलभता को धयान में रख अपने सौ पुत्रों के साथ नाटक की रचना की, जिसका प्रथम मंचन ब्रह्मा की सभा में हुआ। इस नाटक में ज्ञान, कला, विद्या, शिल्प तथा कर्म आदि सभी का समावेश हुआ है। यथा--

"न तद्ज्ञानं न तच्छिल्यं न सा विद्या न सा कला।
नासौ योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन यन्न दृश्यते ॥"

इस नाटक का उद्देश्य था दुखियों का दुख दूर हो, व्यवसाय करने वाले को आय का साधन मिले, व्याकुल अर्थात् अशान्त मन वाले के मन को शान्ति मिले। यथा---

"लोकवृत्तानुकरणं नाट्ययेतन्मयाकृतम्।
दुःखार्तानां श्रमत्तानां शोकार्तानां तपस्विनाम्।
विश्रान्ति जननं काले नाट्यमेतन्मयाकृतम् ॥
धर्म्यं यशस्यमायुष्यं हितं बुद्धिविवर्धनम्।
लोकोपदेश जननं नाट्यमेतद् भविष्यति ॥"

नाटक में सभी लोगों का कल्याण जुड़ा हुआ है भरत मुनि ने निम्न वर्ग, पिछड़े वर्ग तथा अस्पृश्य माने जाने वाले वर्ग को ध्यान में रखकर नाटक की रचना की। इस नाटक को देखने के लिए किसी तरह का कोई भेदभाव नहीं था और न ही इसमें अधिक अर्थ की आवश्यकता ही थी, इससे सभी वर्ग अपना मनोरंजन कर सकते थे। अतः भरतमुनि ने इसे पाँचवा वेद कहा। ब्रह्मा ने चारों वेदों (ऋग्वेद से कथा, सामवेद से गीत, यजुर्वेद से अभिनय और अथर्वेद से रस संग्रहीत करके पंचमवेद नाट्य वेद का निर्माण किया। इसलिए इसे पंचम् वेद की संज्ञा प्रदान की।

नाटक की उत्पत्ति के संदर्भ में एक महत्वपूर्ण किंवदन्ती है जो काफी हद तक सच मानी जा सकती है। भारत कृषि प्रधान

देश रहा है। यहाँ की जनता कृषि-कार्यों से निवृत्त होने के पश्चात् मनोरंजन हेतु गाँवों में तरह-तरह के कार्यक्रम (नृत्य, संगीत, खेल-तमाशा आदि) का आयोजन किया करती थी। वे अपनी खुशी जताने के लिए जैसे-नई फसल आदि के आगमन पर तरह-तरह के उत्सव करके अपनी खुशी का इजहार करते थे। जो एक सीमित अंचल या क्षेत्र तक ही सीमित रह जाता था। क्योंकि आज की तरह उस समय मीडियाई सुविधा नहीं थी। धीरे-धीरे उसका विकास हुआ और उसे लोकनाट्य के नाम से जाना जाने लगा। यह लोकनाट्य पौराणिक कथाओं पर आधारित होता था या दंत कथाओं पर। यह किसी न किसी रूप में समाज कल्याण के उद्देश्य को लेकर खेला जाता था। जैसे - रामलीला, रासलीला, चीरहरण, भरतमिलाप आदि। इन्हीं लोकनाट्यों के आधार पर नाटक का उद्भव माना जाता है। इस प्रकार नाटक की उत्पत्ति विवाद के घेरों से मुक्त नहीं हो पायी है।

अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से शोध-प्रबन्ध को हमने पाँच अध्यायों में विभाजित किया है।

शोध-प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में संस्कृत और हिन्दी में प्राप्त नाटक संबधी अवधारणाओं को निरूपित करते हुए यह स्पष्ट किया गया है कि संस्कृत में जिस अवधारणा को लेकर नाटक का प्रारंभ हुआ हिन्दी नाटक में भी वही अवधारणा दृष्टिगोचर होती है। साथ ही संस्कृत और हिन्दी के नाटकों पर भी दृष्टिपात किया गया है। यह सर्वविदित है कि संस्कृत नाटकों के ही आधार पर हिन्दी नाटकों का विकास हुआ। सर्वप्रथम् हिन्दी नाटकों में संस्कृत नाटकों का रूपान्तरण हुआ, तत्पश्चात् संस्कृत नाटकों की कथावस्तु के आधार पर हिन्दी में नाटक लिखे गये। क्रमशः हिन्दी नाट्य क्षेत्र की व्यापकता एवं कथावस्तु का क्षेत्र भी बढ़ता गया। परिणाम-स्वरूप समसामयिक संदर्भों को लेकर नाटक

लिखे जाने लगे। यहाँ तक कि आज कर्फ्यू, आधे अधूरे, एक और द्रोणाचार्य, त्रिशंकु, बकरी, अंधायुग, सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक, आतंकवाद आदि नये-नये विषयों को लेकर भी नाटक दिखायी देते हैं। अंत में संस्कृत और हिन्दी नाटकों के विकासात्मक पहलुओं को लेकर तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

द्वितीय अध्याय के अन्तर्गत संस्कृत और हिन्दी के उन ऐतिहासिक नाटकों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है जिन नाटकों को मैंने अपने शोध का विषय बनाया है। साथ ही साथ इतिहास तथा ऐतिहासिकता के अर्थ को स्पष्ट करते हुए संस्कृत तथा हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों का तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

तृतीय अध्याय संस्कृत तथा हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों में सामाजिक स्थिति का है। जिसमें यह स्पष्ट किया गया है कि समाज क्या है ? हम समाज किसे कहते हैं ? क्या समाज की जो कल्पना पहले की गई थी और जो मूल्य निर्धारित किये गये थे क्या आज भी वही धारणा और मूल्य हैं ? इसका स्पष्टीकरण देते हुए समाज की परिभाषा और उसके स्वरूप को स्पष्ट किया गया है। समाज की संरचना के विधेयक तत्वों पर दृष्टिपात किया गया है। तत्कालीन समाज में जो कुछ घटित हुआ था या हो रहा था संस्कृत के ऐतिहासिक नाटककारों ने उसे यथातथ्य रूप में अपने नाटकों में चित्रित करने का प्रयास किया। साथ ही ठीक उसी तरह हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों में वर्णित समाज को भी उद्घाटित किया गया है। दोनों का तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए यह अन्तर स्पष्ट किया गया कि संस्कृत के नाटकों का समय और परिवेश भिन्न रहा है और हिन्दी का समय तथा परिवेश

भिन्न। किन्तु इन दोनों नाटकों में कुछ ऐसे पहलू या तत्व हैं जो इन दोनों भाषाओं के नाटकों को आपस में जोड़ते हैं। इसी के स्पष्टीकरण से इस शोध की विशिष्टता एवं महत्व में वृद्धि होती है।

चतुर्थ अध्याय संस्कृत और हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों में राजनैतिक स्थिति का है। इसके अन्तर्गत राजनैतिक अवधारणाओं को प्रस्तुत किया गया है। विभिन्न विद्वानों ने राजनीति संबंधी विचारों को प्रस्तुत करते हुए इसके स्वरूप को स्पष्ट किया गया है। तत्पश्चात् संस्कृत के ऐसे ऐतिहासिक नाटकों को लिया गया है जिसमें राजनीति के सूत्र दिखाई देते हैं या फिर राजनीति को केन्द्र में रखकर नाटक लिखे गये हैं। ठीक इसी तरह हिन्दी के राजनीति केन्द्रित ऐतिहासिक नाटकों को भी सम्मिलत गया है। तदुपरान्त दोनों का तुलनात्मक अनुशीलन किया गया है।

पंचम अध्याय उपसंहार का है। इसके अन्तर्गत शोधप्रबंध के निष्कर्ष को प्रस्तुत किया गया है।

शोधप्रबंध के अन्त में परिशिष्ट के अन्तर्गत सन्दर्भ-ग्रन्थ -सूची दी गयी है।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध को पूर्ण करने में हमें जिन विद्वानों एवं सहयोगियों की प्रेरणा तथा सहयोग, प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से मिलता रहा उनका आभार प्रकट करना मैं अपना परम कर्त्तव्य समझता हूँ। शायद इन लोगों के अभाव से मेरा यह कार्य इतनी आसानी से न हो पाता जितनी आसानी से मैंने इसे पूरा किया।

सर्वप्रथम मैं संस्कृत महाविद्यालय बड़ौदा के प्राचार्य एवं मेरे शोधनिर्देशक डॉ. हरिप्रसाद पाण्डेय का मैं आभार प्रकट करता हूँ जिनकी प्रेरणा एवं कुशल निर्देशन के फलस्वरूप मेरा शोधकार्य बिना किसी बाधा के पूर्ण हो सका।

हिन्दी-विभाग के भूतपूर्व अध्यक्ष प्रो. पारूकांत देसाई का मैं

हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने न सिर्फ मुझे प्रोत्साहन एवं निर्देशन ही दिया बल्कि जिनके सहयोग से शोधकार्य हेतु महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय अनुदान की तरफ से प्राप्त होने वाली त्रिवर्षीय फेलोशिप (युनिवर्सिटी रिसर्च फेलोशिप) का आर्थिक लाभ प्राप्त हो सका जो मेरे शोध के लिए काफी लाभान्वित रहा ।

मेरे इस शोधप्रबंध में महत्त्वपूर्ण भूमिका का किरदार निभाया है हिन्दी-विभाग की व्याख्याता डॉ. शन्नो पाण्डेय ने । अतएव उनका जितना भी आभार व्यक्त करें उतना कम है । इसके साथ ही चाचा श्री भोजदत्त मिश्र , श्री चन्द्रभूषण पाण्डेय (शास्त्री), श्री जय शंकर पाण्डेय तथा डॉ. मायाप्रकाश पाण्डेय के प्रति भी आभार व्यक्त करता हूँ जिनका स्नेहमय सहयोग सदा-सर्वदा हमारे साथ रहा है ।

अन्त में प्रो. मदन गोपाल गुप्त, प्रो. जी.सी. माहेश्वरी (प्रबंध संकाय, म.स.युनिवर्सिटी, बड़ौदा), प्रो. शिवकुमार मिश्र, प्रो. सनत कुमार आदि विद्वानों का आभारी हूँ जिनके कुशल निर्देशन हमें समय-समय पर मिलते रहे । इसके साथ ही मैं अपने माता-पिता (श्रीमती प्रभावती देवी तथा श्री जगतनारायण मिश्र जी) का शुक्रगुजार हूँ जिन्होंने मुझे घर की जिम्मेदारियों से मुक्त रखा और यह कार्य अपनी पूर्णता को प्राप्त हो सका ।

इसके अलावा म.स.विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग के समस्त प्राध्यापकों का हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने शोधकार्य के दौरान प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से यथासंभव सहयोग प्रदान किया है ।

शोधछात्र

राजदेव मिश्रा

(राजदेव मिश्र)